इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों का सामाजिक परिदृश्य और भूमण्डलीकरण

जगदीश सिंह
शोधार्थी
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर
9013672981
jjcharan1990@gmail.com

सारांश

इक्कीसवीं सदी के उपन्यास लेखन में कथ्य को लेकर जो विविधता नजर आती अगर हम कारणों की पड़ताल करें तो जो प्रमुख वजह है उनमें भूमंडलीकरण की कृत्रिमता के सहारे फलता-फूलता बाजार, कंपनियों की लूट, बिचैलियों का स्वार्थ लौलुपता, प्रकृति का अन्तहीन दोहन, रिश्तों में बिखराव, बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीनता, इतिहास की पुनर्व्याख्या, युवा पीढ़ी में अकुलाहट और अतिमहत्त्वाकांक्षी प्रवृत्ति का जोर पकड़ना, महिलाओं का प्रत्येक क्षेत्र में बढ़-चढ़कर भाग लेना और इन सबके अतिरिक्त अस्मितामूलक विमर्शों की विविध रूपों में अभिव्यक्ति आदि ये सभी उपागम कहीं न कहीं उपन्यास लेखन के विषय बने हैं।

भूमण्डलीकरण ने जीवन के जिन विविध पहलुओं को सबसे अधिक प्रभावित किया उनमें सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रमुखता से लिया जा सकता है। भूमण्डलीकरण के बाद सिर्फ व्यवहार ही नहीं बदला आदत और विचार भी बहुत तेजी से बदल रहे हैं तो लाजिम है तो सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों की टकराहट होना। भूमण्डलीकरण के मौजूदा मॉडल से दुनिया भर की संस्कृतियों में तीव्र परिवर्तन हुए हैं। भारत पर विदेशी संस्कृतियों के हमले एवं भारतीयों की खुद अपनी संस्कृति के प्रति हीन भावना कहीं-न-कहीं हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को चोट करती है। महात्मा गांधी के विचारों को हमने भुला दिया है। उन्होंने बहुत पहले ही आगाह कर दिया था, 'मेरा यह कहना नहीं है कि हम शेष दुनिया से बचकर रहें या अपने आस-पास दीवारें खड़ी कर लें। मैं यह जरूर कहता हूँ कि पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखे और उसे आत्मसात करें। दूसरी संस्कृतियों के सम्मान की, उनकी विशेषताओं को समझने और स्वीकार करने की बात उसके बाद ही आ सकती है, उससे पहले नहीं।'

21वीं सदी की चकाचैंध में हमने अपने प्राचीन मूल्यों को वास्तविक दुनिया से बहुत दूर कर दिया है। गौतम बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों के नैतिक आदर्शों को भारतीयों ने चरितार्थ किया होता तो व्यक्ति के जीवन में इतनी शून्यता नहीं आती। इस प्रकार भूमण्डलीकरण के पश्चात् समाज में हो रही घटनाओं को अभिव्यक्त करने में 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास प्रतिबद्ध है।

बीज शब्द: *सदी, हिंदी, उपन्यास, सामाजिक, सांस्कृतिक*

शोध विस्तार

प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की संस्कृति सदैव ही समाज को स्थायित्व प्रदान करती रही है जिसके कारण परिवार खुशहाली के साथ ही समृद्धि के मार्ग पर सदा अग्रसर रहा। लोग हर तरह की परेशानी में कंधे से कंधा मिलाकर निदान में जुट जाते थे। सामंजस्यता के साथ पारिवारिक कार्य सम्पन्न होते थे।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों ने पारिवारिक विखंडन की पीड़ा को महसूस करने का भरसक प्रयास किया है। ममता कालिया का 'दौड़' उपन्यास भूमण्डलीकरण और उत्तर-आधुनिक समय का मर्मांतक आख्यान है। इस लघु उपन्यास के युवा चरित्र पवन स्टैला और सघन सिर्फ इस उपन्यास के ही नहीं बल्कि समकालीन समय के आधुनिक चरित्र है। ये वो चरित्र है जो वर्तमान मानव के उपभोक्तावादी संस्कृति का मॉर्डन जीवन जीते मध्य और उच्च मध्यवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास में जिस तरह की परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। एकल परिवार की कहानी जिन सदस्यों के इर्द-गिर्द घूमती है आज के हर परिवार की कहानी बन गयी है। बच्चों के सुनहरे भविष्य के लिए माता-पिता अपने आरामदायक जीवन को त्यागकर, अपनी सुविधाओं को दरकिनार करते हुए, उन्हें महंगी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देकर नई दुनिया की राह दिखाते हैं, फलस्वरूप बच्चे इस नयी परिस्थितियों और वातावरण में इतने आगे निकल जाते हैं कि उन्हें माता-पिता के उन बेशकीमती क्षणों को याद करने का वक्त ही नहीं मिलता।

इस उपन्यास में ममता कालिया ने पवन, शरद, अभिषेक जैसे पात्रों के जरिए बाजार तथा मार्केटिंग की नीतियों का परिचय दिया है पारिवारिक सम्बन्धों के टूटन एवं खिंचाव को पवन, सघन तथा स्टैला के जरिए उन्होंने बखूबी चित्रित किया है। जब पवन इलाहाबाद अपने माँ-बाप से मिलने जाता है तो वे लोग उसे इलाहाबाद के आस-पास की कहीं जॉब ढूँढने को कहते हैं। उन्हें आशा थी कि इस तरह वे अपने बेटे के कैरियर में रूकावट भी नहीं बनेगें और पवन भी उनके पास रह सकेगा। लेकिन पवन का दृष्टिकोण कुछ अलग ही होता है। वह अपने पिता के कलकत्ते जाकर बसने की सलाह पर कहता है, "पापा मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकत्ते में प्रोडयूसर्स का मार्किट है, कंज्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ कल्चर हो न हो, कंज्यूमर कल्चर जरूरी हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[1] पवन के इस जवाब से माता-पिता का अचंभित होना स्वाभाविक था। गौतम बुद्ध ने जिस मध्यम मार्ग की बात कही थी उससे युवा पीढ़ी दूर जाती नजर आ रही है। आजादी के बाद हमारे बुजुर्गों ने जो सपने देखे थे भूमण्डलीकरण के पश्चात् वे पूरी तरह टूटते-बिखरते दिख रहे हैं।

पवन जितने दिन घर रहता है, उतने दिन उसका व्यवहार अपने माता-पिता से, विशेषकर माँ से एक पराए व्यक्ति जैसा रहता है। यहाँ तक धोबी से इस्त्री होकर आए कपड़ों के लिए पवन ज्यादा पैसे दे देता है तो उसकी माँ उसे समझाती है कि यदि वह टूरिस्ट की तरह पैसे देता रहेगा तो ये लोग सिर चढ़ जाएंगे। लेकिन पवन अपनी माँ की इस बात पर हंगामा खड़ा कर देता है। अपने दफ्तर में मिल रही इज्जत का हवाला देकर माँ को ताने दे बैठता है। साथ ही वह यह भी कहता है कि उसके जन्मदिन पर उसे ग्रीटिंग कार्ड नहीं भेजा गया जिससे उसके ऑफिस के लोग उसकी हंसी उड़ाते हैं। पवन इस बात से भी नाराज था कि अब उसके कोई भी दोस्त शहर में नहीं रहे, सभी कैरियर के लिए बाहर जा चुके हैं। अपने पिता से बिना किसी बात के उलझता रहता है। धर्म के विषय में वो वह अपने पिता से बिलकुल भी सहमती नहीं जताता। उसके पिता बचपन से शंकर के अद्वैतवाद के बारे में उसे बताते जा रहे थे लेकिन पवन अपने नए आधुनिक आध्यात्मिक गुरू को ही अधिक मान्यता देता है तो उसके "पिता आहत हो देखते रह गए। उनके बेटे के व्यक्तित्व में भौतिकतावाद, अध्यात्म और यथार्थवाद की कैसी त्रिपथगा बह रही थी।"[2]

इस प्रकार 'दौड़' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने भूमण्डलीकरण के इस दौर में आधुनिकता के नाम पर समाज में हो रहे अवांछित बदलाव का पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ा असर तथा अति महत्त्वाकांक्षी युवा पीड़ी तरक्की के पीछे दौड़ रही है उनका जीवन विषयक नजरिये का चित्रण प्रस्तुत किया है।

भूमण्डलीकरण के प्रभावों की अत्यंत गहराई से स्वयं प्रकाश ने अपने उपन्यास 'ईंधन' में चित्रित कर सर्जनात्मक प्रतिरोध को अभिव्यक्ति दी है। रोहित और स्निग्धा उपन्यास के मुख्य पात्र है। दोनों के दाम्पत्य जीवन की कथा का विस्तार, बिखराव और तनाव को जिस तरह से लेखक ने दर्शाया है वह इक्कीसवीं सदी के नगरीय जीवन में हर मध्यमवर्गीय परिवार की यही कहानी को दोहराता है। रोहित का खराब आर्थिक स्थिति में उबरने की जद्दोजहद तथा बदलती परिस्थितियों में अपने आप को ऊपर उठाने की कवायद में बहता चला जाता है। भाग दौड़ भरे जीवन में वह इतना मशरूफ हो जाता है अपनी पत्नी स्निग्धा व इकलौते बेटे निखिल को समय नहीं दे पाता। उपन्यास का शीर्षक 'ईंधन' भूमण्डलीकरण की अर्थ संस्कृति में बिखरते पारिवारिक रिश्तों को ठीक ही परिभाषित करता है। यहाँ ईंधन इस्तेमाल का पर्याय बन जाता है। रोहित मायावी दुनिया की भागदौड़ में सुख-सुविधाओं के पीछे भागते-भागते ईंधन की तरह कब इस्तेमाल होता जाता है उसका आभास भी नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप परिवार का विभाजन, रिश्तों की टूटने की प्रक्रिया, अर्थसंस्कृति का निजी रिश्तों पर हावी होना भूमण्डलीकरण के प्रभाव के रूप में नजर आता है।

आज युवाओं का एक बड़ा वर्ग विदेशों में जा बसा है और उनके माता-पिता यह देश में रह गए हैं। पारिवारिक रिश्तों पर व्यक्तिगम महत्त्वाकांक्षा हावी हो गई है। बुजुर्ग अपना जीवन एकांकीपन की पीड़ा में गुजारने को त्रस्त है। बीना आंटी के माध्यम से उपन्यासकार ने अकेलेपन की पीड़ा और खत्म होती मानवीय संवेदनाओं को भलीभाँति उकेरा है, "कोई किसी का नहीं है। कोई काम नहीं आता। आप जिंदगीभर मर-खपकर जिन्हें खड़ करते हो वो भी काम नहीं में इस इतने बड़े मकान में किसी रोज मर गई तो कौन आएगा? कोई नहीं आएगा। भले दस रोज मेरी मिट्टी खराब होती रहे। अभी लाजपत नगर में हमारे एक रिश्तेदार थे... मर गए। अड़ोसियों-पड़ोसियों को बदबू आई तो दरवाजा तोड़ा। उनके बच्चों को अमरीका कोप लगाया तो कैद है... उनका अंतिम संस्कार वगैरह हमारी तरफ से आज ही कर दो। विडियो फिल्म बनाके हमको भेज देना। हम पे कर देंगे। बोलो! कोई बात है!! कोई इंसानियत है!!"[3]

रोहित वैश्वीकरण के कारण फैलते बाजार के व्यूह में इस कदर खोता चला जाता है कि वह अपने इकलौते पुत्र निखिल का ख्याल ही नहीं रख पाता है। निखिल को भौतिक संसाधनों कमी कभी महसूस नहीं होती है, पर सबसे जरूरी पिता का स्नेह उसे नहीं मिल पाता। जब तक उसे इस बात का आभास होता है तब तक बहुत देर हो जाती है वह अपने आप को निस्सहाय, निरर्थक अनुभव करता है, "मेरा ध्यान पैसा कमाने और वस्तुएँ जुटाने में लगा रहा। मैं उपलब्धियों की मीनार पर खड़ा संभावनाओं के उस पहाड़ पर निगाहे जमाए रहा जो था तो न जाने कितनी दूर, लेकिन सामने नजर आ रहा था और जिस पर मुझे फतेह हासिल करनी थी। उस दलदल को मैंने गंभीरतापूर्वक लिया ही नहीं जो मेरे कदमों के ठीक नीचे बनती जा रही थी और अंततः जिसमें धंसकर मुझे और मेरे परिवार को नष्ट हो जाना था।"[4]

भूमिका

साहित्य के रूपों का विकास समाज के विकास से जुड़ा हुआ होता है, इसलिए साहित्य रूपों की संरचना का उस सामाजिक संरचना से गहरा सम्बन्ध होता है, जिसमें साहित्य के रूप पैदा होते हैं। वैसे तो पूरा साहित्य

लेकिन विशेष रूप से उपन्यास अनुभव की अभिव्यक्ति करता है। अनुभव की अभिव्यक्ति के कारण ही वह दूसरों को अनुभव करने की क्षमता भी प्रदान करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि "उपन्यास का कार्य "मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना है और आधार 'कल्पना शक्ति' नहीं 'अनुमान शक्ति' है।"[5] वे लिखते हैं "मानव-जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का कार्य करता है, यत्न करता है जिससे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है। बहुत लोग उपन्यास का आधार शुद्ध कल्पना बतलाते हैं। पर उत्कृष्ट उपन्यासों का आधार अनुमान शक्ति है न कि कल्पना।"[6]

उपन्यास का आधार कल्पना है या अनुमान यह बहस का विषय हो सकता है। खैर हमें अपने विषय से भटकना नहीं है। उपन्यास ने अपनी विकास-यात्रा में विभिन्न पड़ावों को देखा खासकर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में हिन्दी उपन्यासों ने अपने पूर्ण आकार को ग्रहण करते हुए नवीन आखेटों से साहित्यिक परिदृश्य को बदला भी और व्यापकता भी दी। नारीवादी, दलित और आदिवासी विमर्शों के आगमन से उपन्यास विधा में शिल्प और कथ्य में बदलाव तो देखा ही जा सकता है, साथ ही वैचारिक स्तर पर अस्तित्व और अपने हक की पक्षधरता जैसे स्वर मुखरता से मजबूत होने लगते हैं।

भूमण्डलीकरण बीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण परिघटना है। भले ही यह सोची-समझी रणनीति के तहत घटित हुई हो। इस घटना ने वैश्विक समाज को आन्तरिक और बाह्य दृष्टि से गहराई से प्रभावित किया है। सूचना और प्रौद्योगिकी ने समाज को लाभान्वित तो जरूर किया लेकिन उसके दुष्परिणामों ने समाज को रसातल में धकेल दिया है। वो एक समय था जब बच्चे दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियों के साथ बड़े होते थे। बचपन पड़ोसी के बच्चों के साथ खेलते-कूदते बीतता था। गाँव-कस्बों में सभी परिवार एक-दूसरे के दुःख-सुख में शरीक होते थे। वैवाहिक उत्सव में तो पूरे गाँव का भोज वहा होता था जहाँ अमुक कार्यक्रम तय होता था। रिश्तेदारों का जमावड़ा तो कई दिन पहले ही शुरू हो जाता था एक अलग ही खुशहाल माहौल हो जाता था। किसी के घर में अमुक वस्तु उपलब्ध नहीं है तुरन्त पड़ोस से पूर्ति हो जाती थी। इसी तरह किसी के घर कोई मृत्यु हो जाये वहाँ भी पूरा गाँव शोकाकुल हो जाता था, लेकिन वर्तमान की अतिमहत्त्वाकांक्षी व्यस्त जीवन शैली ने इस मिठास भरे समाज में सभी के चेहरे पर मुखौटा चढ़ा दिया है। यह कृत्रिम मुखौटा अपने स्वार्थ की पूर्ति में लीन है।

निष्कर्ष

पारिवारिक विभाजन के प्रमुख कारणों में अर्थ केन्द्रित मानसिकता और दो पीढियों के बीच मूल्यों में अंतर होना माना जा सकता है। दरअसल यह वृत्तियाँ परिवार के सदस्यों की आहतों का स्वाभाविक हिस्सा बनने लगती है वैसे ही उनके व्यवहार में अहंकार, दंभ, किसी को कम आंकना जैसी दोषवृत्ति घर कर जाती है। परिणामस्वरूप परिवार में कलह की स्थिति उत्पन्न होती है। जो आगे विभाजन का कारण बनती है। सनद रहे भूमण्डलीकरण ने एक तरफ युवाओं को नये अवसर दिये हालांकि वह भूलभुलैया ज्यादा साबित हुए हैं वहीं दूसरी तरफ संयुक्त परिवार के टूटने की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो चुकी है।

आज की युवापीढ़ी इतनी महत्त्वाकांक्षी हो गई। इसे सब कुछ शीघ्रता से चाहिए। एक साथ पाने के इस उपक्रम में अपने देश की सौंधी मिट्टी की सुगध के साथ बहुत-कुछ छोड़ता जा रहा है। 'द ग्रेट इंडियन फैमिली' किताब की लेखिका गीतांजलि प्रसाद एकल परिवारों के विडम्बनात्मक जीवन की ओर हमारा ध्यान खींचती हैं। वे कहती हैं, "परिवार जबरदस्त दबाव के शिकार हो रहे हैं। कामकाजी माँ, अति व्यावसायिक पिता, कॉल सेंटर में

काम करने वाले बच्चे... परिवार में साहचर्य के लिए कोई समय शेष नहीं रह गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अकेला, अपनी दुनिया में जी रहा है। परिवार में निजता और अकेलेपन के कारण परिवार का अर्थ पुनर्परिभाषित हो रहा है।"[7]

सामाजिक परिपाटी का नया छद्म रूप पारिवारिक सदस्यों की व्यक्तिगत स्वार्थ भावना को ज्यादा महत्त्व देकर सामाजिक मूल्यों की नई परिभाषा का निर्माण करता है जिसमें पारिवारिक भावनाओं पर निजी स्वार्थ हावी रहता है। भूमण्डलीकृत बाजार ने हिल-मिल कर रहने वाले समाज को भीड़-तंत्र के रूप में तब्दील कर दिया है। नयी पीढ़ी केएफसी और पीजा हाट में इतनी मशगुल हो रखी है कि उसे रिश्तों की कोई परवाह नहीं। या फिर यों कहे कि बड़े होने के साथ ही उनमें इस तरह के विकृत मूल्य विकसित हो गए हैं जिससे वह अपने करीबियों के प्रति संवेदनाहीन हो गये हैं। 'उधर के लोग' उपन्यास में अजय नावरिया ने भूमण्डलीकरण की चकाचैंध में दिल्ली जैसे महानगर की जीवन शैली के एकांगी रूप का यथार्थ चित्रण किया है। मैट्रो सिटी में परिवार का मतलब पति-पत्नी और बच्चे। माता-पिता, चाचा-चाची, मामा-मामी, भाई-बहन जैसे रिश्ते तो बस नाम के रह जाते हैं। आलम तो यह है कि आपको पड़ोसी की खबर तक नहीं। वे उपन्यास में लिखते हैं, "वंदना की माँ से चिक-चिक लगी रहती थी। माँ उससे घर के काम में मदद की उम्मीद करती थी। वंदना मदद करती भी थी, पर उसे काम की आदत ही नहीं थी। माँ उसे कोई काम देती, तो वह पाँच मिनट के काम में घंटा भर लगा देती थी। माँ उस पर झल्लाती और मुझे ताने मारती। वंदना के पिता चार्टेड एकाउंटेंट थे और काका पैसे वाले थे। वंदना, माँ के रूखे व्यवहार से तंग आकर मुझे खरी-खोटी सुनाने लगी थी। माँ और पत्नी के झगड़े के बीच मैं पीस गया था।"[8]

वाक्य में, इक्कीसवीं सदी की यांत्रिक दुनिया में पारिवारिक सम्बन्धों में मेल-मिलाप कम दूरियाँ अधिक बनी है। व्यक्तिगत स्वार्थ पर टिके रिश्तों की डोर दिन ब दिन महीन होती जा रही है। यह डोर कब टूट जाए इसका कुछ पता नहीं। फिलहाल तो यही सबसे बड़ी चुनौती है किसी भी तरह मनुष्यता बची रहे। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने ठीक ही कहा था कि किसी भी रिश्ते की बुनावट का सबसे पहला आधार ही उसमें स्वार्थ की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. ममता कालीया, प्रकाशन वर्ष- 2009, दौड़ उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 40-41
2. ममता कालीया, प्रकाशन वर्ष- 2009, दौड़ उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 46
3. स्वयं प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष- 2004, ईंधन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 198
4. स्वयं प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष- 2004, ईंधन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 210-211
5. रामदरश मिश्र, प्रकाशन वर्ष- 2016, आधुनिक गद्य के विविध रूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 180
6. रामदरश मिश्र, प्रकाशन वर्ष- 2016, आधुनिक गद्य के विविध रूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 190
7. गीतांजलि प्रसाद, वर्ष- 2006, द ग्रेट इंडियन फैमिली,प्रकाशक पेंग्विन, पृ.सं. 24
8. अजय नावरिया, वर्ष- 2008, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 25